लेख

लोककथाओं में अंतर्निहित सामाजिक कौशल
एक शिक्षणशास्त्रीय विवेचना

ऋषभ कुमार मिश्र*
शुभम कुमार पति**

यह लेख भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान शोध परिषद द्वारा वित्तपोषित शोध परियोजना का अंग है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की संस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए इस लेख का प्रतिपाद्य है कि भारत की आदिवासी लोककथाएँ बच्चों में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को विकसित करने का एक महत्वपूर्ण शिक्षणशास्त्रीय माध्यम हो सकती हैं। इस विचार की पुष्टि के लिए मास्टेन (2015) द्वारा प्रस्तुत रक्षात्मक कारकों एवं सामाजिक-सांवेगिक विकास की सैद्धांतिकी का उपयोग किया गया है। इस सैद्धांतिकी का उपयोग करते हुए प्रस्तुत शोध लेख में तीन आदिवासी समुदायों क्रमशः बैगा, कोल, कुरुम्बा समुदायों की तीन लोककथाओं क्रमशः 'कहानियों की कहानी', 'बाप बेटा' और 'गड़ा धन' की विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण से ज्ञात होता है कि लोककथाएँ संस्कृति स्पंदित सामग्री हैं, जिनमें परिवेश के रक्षात्मक और जोखिम युक्त कारकों की प्रस्तुति होती है। इन कारकों के बीच केंद्रीय पात्र अपने परिवेश के सहयोगी तत्वों और व्यक्तिगत विशेषताओं का उपयोग करते हुए चुनौतियों का सामना करता है। लोककथाओं की उक्त विशेषता को ध्यान में रखते हुए यह लेख इनके शिक्षणशास्त्रीय आयामों पर प्रकाश डालता है और सुझाता है कि लोककथाओं के साथ बच्चों की संलग्नता उनके सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को संवर्धित करने में योगदान दे सकती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.-एस.ई.) 2023 में विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु सामाजिक-सांवेगिक अधिगम पर बल दिया गया है। इसके लिए नीति की संस्तुति है कि हमें पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों में संज्ञानात्मक पक्ष के साथ-साथ सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को एकीकृत करना चाहिए, जिससे बच्चों को अपनी भावनाओं को पहचानने, उनका प्रबंधन करने, दूसरों से मधुर संबंध बनाने और निर्णय लेने में सहायता मिल सके (पृ. 21)। यह नीति सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को मौलिक एवं उच्च-स्तरीय क्षमता मानते हुए सांवेगिक बुद्धिमत्ता, समानुभूति और पारस्परिक कौशल के विकास के लिए इसे एक महत्वपूर्ण घटक मानती है।

**सहायक आचार्य*, शिक्षा संकाय, लोधी रोड परिसर, डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली 110 006
***शोधार्थी*, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय 110 007

एन.ई.पी. 2020 के अनुसार सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के माध्यम से बच्चों में न केवल सहभागिता और समावेशिता का विकास होगा, बल्कि इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य भी सुदृढ़ होगा। इसके समानांतर एन.सी.एफ.-एस.ई. 2023 में इन कौशलों को पूर्व-प्राथमिक कक्षा से ही विकसित करने का सुझाव दिया गया है। इसके लिए विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के विकास के लिए सहयोगी रणनीतियों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त दोनों नीतिगत दस्तावेजों में सामाजिक-सांवेगिक अधिगम के लिए एकीकृत और संपूर्ण विद्यालयी उपागम पर बल दिया गया है, जिसका तात्पर्य है कि इन कौशलों की शिक्षा को विद्यालय स्तर की प्रत्येक अधिगम गतिविधि का हिस्सा बनाया जाए। इसका निहितार्थ है कि हमें विद्यालय स्तर पर ऐसे शिक्षणशास्त्रीय उपागमों का प्रयोग करना होगा, जिनके माध्यम से स्वाभाविक रूप से सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को संवर्धित किया जाए। एन.ई.पी. 2020 की इस संस्तुति और अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए यह लेख लोककथाओं को सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के संवर्धन हेतु संभाव्य शिक्षणशास्त्रीय संसाधन के रूप में विश्लेषित करते हुए इनके निहितार्थों की विवेचना करता है।

सामाजिक-सांवेगिक अधिगम और लोककथाएँ

सामाजिक-सांवेगिक अधिगम द्वारा अर्जित ज्ञान, अभिवृत्तियों और कौशलों की सहायता से बच्चे स्वयं एवं दूसरों के संवेगों को समझ सकते हैं और इनका प्रबंधन कर सकते हैं। इसके आधार पर वे दूसरों के साथ सकारात्मक पारस्परिक संबंध विकसित करते हुए समानुभूतिपूर्ण परिवेश का पोषण कर सकते हैं। वे चुनौतीपूर्ण एवं समस्यात्मक स्थितियों में जिम्मेदारीपूर्ण निर्णय ले सकते हैं। शोध कार्य बताते हैं कि सामाजिक-सांवेगिक अधिगम से बच्चों में समाजोन्मुख व्यवहार विकसित होता है (कौर और शर्मा, 2022; गुप्ता, 2024) तथा उनकी अकादमिक उपलब्धि बढ़ती है। वे नकारात्मक मनोदशाओं, जैसे— आक्रामकता एवं हिंसा से दूर होते हैं। उनमें मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ कम होती हैं (मुरुगप्पन और वाणीश्री, 2019)। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक-सांवेगिक अधिगम के पाँच घटक पहचाने गए हैं—

- पहला घटक है— आत्म जागरूकता, इसका तात्पर्य है कि बच्चे अपने संवेगों, व्यवहारों और विचार प्रक्रियाओं के प्रति सचेत हों। सांवेगिक स्थिति का उनके व्यवहारों एवं निर्णयों पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका आकलन कर सकें। वे अपनी सीमाओं और मजबूत पक्ष समर्थता को पहचान सकें, तदनुरूप निर्णय ले सकें।
- दूसरा घटक है— आत्म प्रबंधन, इसका तात्पर्य है विभिन्न परिस्थितियों एवं अंतःक्रियात्मक दशाओं में संवेगों, विचारों और क्रियाओं का नियमन करना। इसके अंतर्गत तनाव प्रबंधन, सतत अभिप्रेरणा को बनाए रखना, लक्ष्य निर्धारण और तदनुरूप योजना निर्माण करना सम्मिलित है।

- तीसरा घटक है— सामाजिक जागरूकता, इसका तात्पर्य है, विभिन्न संस्कृतियों एवं पृष्ठभूमि से आने वाले अन्य हमउम्र साथियों एवं वयस्कों के प्रति समानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना और उनके परिप्रेक्ष्यों को समझने का प्रयत्न करना। इसके अंतर्गत सामाजिक व्यवहारों, रीति-रिवाजों के प्रति स्वीकार्यता और सम्मान सम्मिलित है।
- चौथा घटक है— सामाजिक संबंध कौशल, इसके माध्यम से सहयोगी तंत्र के रूप में परिवार, विद्यालय और समुदाय से सकारात्मक संबंध विकसित करने की कुशलता विकसित होती है। इसमें प्रभावपूर्ण संप्रेषण, दूसरों को ध्यानपूर्वक सुनना, सहयोग करना, जो उचित न लगे उसके प्रति उत्तर देना, विचार एवं निर्णय करते हुए सामाजिक दबाव में न आना, दूसरों की और खुद की मदद करना सम्मिलित है।
- पाँचवा घटक है— जिम्मेदारी पूर्ण निर्णय लेना, इसका तात्पर्य है कि विपरीत एवं चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में खुद के विचारों एवं क्रियाओं का नियमन करते हुए दूसरों और खुद के हित में निर्णय लेना। इसमें समस्या का यथार्थपरक मूल्यांकन करने की क्षमता, सामाजिक मानकों और नैतिक आधारों को संज्ञान में लेते हुए निर्णय लेना, स्व और सर्वहित के आयामों पर विचार करना सम्मिलित है।

उपर्युक्त अनुच्छेद में सामाजिक-सांवेगिक अधिगम की जिस संकल्पना और जिन घटकों की चर्चा की गई, वे वास्तविक जीवन से संबंधित चुनौतियों से निपटने तथा सकारात्मक परिवर्तन के लिए सहायक होते हैं। मास्टेन (2015) ने स्पष्ट किया है कि बच्चों में ये कौशल आनुवांशिक नहीं होते हैं तथा इन्हें विकसित एवं संवर्धित किया जा सकता है। इस कार्य में रक्षात्मक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। मास्टेन (2001) के अनुसार रक्षात्मक कारकों के चार आयाम होते हैं—

- पहला— प्रीतिपूर्ण संबंध, इसके अंतर्गत माता-पिता, भाई-बहन एवं अन्य महत्वपूर्ण वयस्कों के द्वारा दिया जाने वाला प्रोत्साहन, सहयोग, मार्गदर्शन एवं देखभाल सम्मिलित है।
- दूसरा— पहल करने की अभिवृत्ति, इसमें विभिन्न परिस्थितियों में सक्रिय ढंग से अवसरों को खोजने और खुद के पक्ष में उसका उपयोग करना सम्मिलित है।
- तीसरा— स्व-नियमन, इसके अंतर्गत व्यक्ति द्वारा खुद के संवेगों की पहचान, प्रबंधन एवं समस्यात्मक परिस्थितियों में किए जाने वाले निर्णय सम्मिलित हैं।
- चौथा— सांस्कृतिक स्वीकृति, इसमें सांस्कृतिक विश्वास सम्मिलित हैं जिसके आधार पर हम स्वयं के परिवेश के अन्य घटकों से संबंध परिभाषित करते हैं।

प्रत्येक संस्कृति अपने लोकाख्यानों के माध्यम से इन चारों आयामों से बच्चों को परिचित कराती है और इसके द्वारा उनके सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को संवर्धित करती है। इस तरह के लोकाख्यानों का एक प्रमुख उदाहरण लोककथाएँ हैं, जो बच्चों को मानवीय अनुभवों, समाज और मूल्यों के बारे में गहराई से सोचने के लिए प्रोत्साहित करती हैं तथा वास्तविक जीवन में उन्हें आलोचनात्मक निर्णय लेने में सहायता

प्रदान करती हैं। लोककथाओं में पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से विभिन्न तरह की सामाजिक-सांवेगिक चुनौतियाँ प्रस्तुति की जाती हैं (ओर, 2000) और इनके द्वारा बच्चों में सांवेगिक बुद्धिमता (दीक्षित और अन्य, 2017) तथा सकारात्मक सामाजिक संबंधों को स्थापित करने की समझ (कुमारी और यादव, 2017) को भी विकसित किया जा सकता है। ये बच्चों के सामाजिक-सांवेगिक विकास में एक शिक्षणशास्त्रीय उपकरण की तरह कार्य करती हैं (सरस्वती और अन्य, 2017)।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण हीथ और अन्य (2005) लोककथाओं को 'बिबिलियोथेरेपी' का एक महत्वपूर्ण संसाधन मानते हैं। इनके अनुसार लोककथाओं के कथानक, घटनाओं और पात्रों के माध्यम से पाठक या श्रोता को चुनौतीपूर्ण स्थिति में संवेगों का नियमन, जिम्मेदारीपूर्ण निर्णय एवं स्वनियमन का अवसर उपलब्ध होता है। लोककथाएँ बच्चों में समस्या समाधान का कौशल विकसित करती हैं। यद्यपि ये वयस्कों द्वारा लिखित होती हैं, लेकिन ये बच्चों में हीनता या असमर्थता का बोध पैदा करने के बदले सामर्थ्य व आत्मनिर्भरता का बोध पैदा करती हैं। लिंडमैन और क्लींग (1969) बाल्यावस्था के संदर्भ में बताते हैं कि इस अवस्था में बच्चों को संवेगों की पहचान एवं प्रबंधन, सामाजिक परिवेश में समायोजन एवं उत्तरोत्तर विकास स्तरों में संचरण संबंधित सामाजिक-सांवेगिक चुनौतियों का सामना करना होता है। इसके लिए लोककथाएँ समाधानोन्मुख युक्तियों एवं कौशलों से परिचित कराती हैं। हीथ और अन्य (2005) लोककथाओं के प्रभाव का एक प्रक्रियात्मक मॉडल प्रस्तुत करते हैं।

- इस मॉडल का प्रथम अवस्था लोककथा के साथ संलग्नता है। इस अवस्था में बच्चों को लोककथा की काल्पनिक घटनाओं एवं पात्रों के साथ संलग्नता प्रदान की जाती है। जब बच्चे लोककथा को पढ़ते या सुनते हैं, तब वे उसके घटनाक्रम के प्रति आकर्षित होते हैं। वे आगे की घटनाओं को जानने के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हैं। इस तरह से वे आख्यान के साथ प्रवाह में आ जाते हैं। जब लोककथा में विद्यार्थियों की रुचि आ जाती है तो वे उसके कथानक और पात्रों के साथ स्वयं को पहचानने लगते हैं।
- पात्र और कथानक के साथ स्वयं का जुड़ाव महसूस करना, दूसरी अवस्था है। अब बच्चे पात्रों के बदले खुद को नायक की तरह घटनाक्रम में रखने लगते हैं। जैसा पात्र महसूस कर रहा होता है, वैसा वे खुद महसूस करने लगते हैं।
- तीसरी अवस्था में पाठक या श्रोता पात्र जैसा ही अभिव्यक्त करने लगते हैं। वे उसी तनाव से गुजरते हैं, जैसा पात्र गुजर रहा होता है। वे उस जैसे ही विचार एवं भाव को व्यक्त करने लगते हैं। जैसे-जैसे वह पात्र समस्याओं का समाधान करता है वैसे-वैसे पाठक या श्रोता को भी संवेगी तनाव कम होता जाता है।
- चौथी अवस्था में पाठक या श्रोता लोककथा के आधार पर अपनी अंतर्दृष्टि विकसित करते हैं। कथा में क्या हुआ? उन्होंने क्या समझा? और पात्रों की समालोचना आदि इस अवस्था में होते हैं।

- पाँचवी अवस्था, सार्वभौमिकता की होती है। इसमें पाठक या श्रोता अर्जित कौशलों का वास्तविक परिस्थितियों में उपयोग करने लगते हैं। निहितार्थ है कि लोककथाएँ बच्चों में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों का विकास करने वाले सांस्कृतिक उपकरण हैं। इनकी संस्कृति विशेष से संबद्धता संवेगों की पहचान, प्रबंधन और नियोजन में इनकी उपादेयता को बढ़ा देती है।

शोध प्रश्न एवं विधि

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यह लेख चयनित लोककथाओं का विषयवस्तु विश्लेषण करते हुए निम्नलिखित प्रश्नों को संबोधित करता है—

- लोककथाओं में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के संवर्धन के लिए किन रक्षात्मक कारकों की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है?
- लोककथाओं में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों का उपयोग करते हुए किस तरह से केंद्रीय पात्रों द्वारा विपरीत परिस्थितियों और चुनौतीपूर्ण समस्याओं का सामना किया गया?
- एक शिक्षणशास्त्रीय संसाधन के रूप में लोककथाओं का प्रयोग करते हुए सामाजिक-सांवेगिक कौशलों का संवर्धन किस तरह से किया जा सकता है?

इस लेख में लोककथाओं के माध्यम से उपरोक्त प्रश्नों के संदर्भ में विवेचना करने के लिए भारत के बैगा, कोल और कुरुम्बा समुदायों की लोककथाओं क्रमशः 'कहानियों की कहानी', 'बाप-बेटा' और 'गड़ा धन' का प्रदत्त के रूप में सोद्देश्य चयन किया गया है। बैगा समुदाय भारत के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं झारखंड राज्य में निवास करता है। इस समुदाय के लोग मुख्य रूप से भोजन संग्रहण, जड़ी-बूटी संग्रहण तथा मजदूरी का कार्य करते हैं तथा ये स्थानीय पादपों एवं उनके उपयोग संबंधी गुणवत्तापूर्ण जानकारी रखते हैं। इनके द्वारा मनाए जाने वाले त्योहारों में से 'चरेता' तथा 'रसनावा' प्रमुख हैं। ब्रिटिश काल में मुंडा, उराँव, हो तथा भूमिज समुदाय को सामूहिक रूप से कोल जनजाति के रूप में संबोधित किया जाता था। इसके अलावा मध्य भारत में कई अन्य आदिवासी समुदायों को भी कोल जनजाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस शब्द का स्रोत *ऋग्वेद* तथा *मार्कंडेय पुराण* में भी मिलता है। यह जनजातियाँ मुख्य रूप से जंगल के उत्पादों पर आश्रित हैं। कुरुम्बा समुदाय भारत के कर्नाटक, तमिलनाडू तथा केरल राज्य में निवास करता है। इस समुदाय का मुख्य पेशा शहद और गोंद इकट्ठा करना है, हालाँकि कई स्थानों पर इस समुदाय के लोग भेड़ चराने के कार्य को प्राथमिकता देते हैं। इस समुदाय के लोग पर्यावरण, जीव-जंतु, पक्षी, चट्टानों की पूजा करते हैं।

चयनित कहानियाँ राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित *भारत के आदिवासी क्षेत्रों की लोककथाएँ* (2023) से ली गई हैं। इन तीनों कहानियों में केंद्रीय पात्र के रूप में किसी बच्चे की भूमिका है जो जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए अनुकूलकों की मदद से निर्णय लेता है तथा अपेक्षित सकारात्मक परिणामों को प्राप्त करता है।

उपर्युक्त शोध प्रश्नों को संबोधित करने के लिए चयनित लोककथाओं का निगमनात्मक विषयवस्तु

विश्लेषण किया गया है। शोध कार्य के लिए लोककथाओं की चयन प्रक्रिया के दो स्तर थे। पहले स्तर में चयनित समुदायों की सभी लोककथाओं का अध्ययन किया गया और शोध कार्य की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उन लोककथाओं का चयन किया गया, जिनमें मुख्य पात्र के रूप में कोई बाल पात्र मौजूद था। दूसरे चरण में सामाजिक-सांवेगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हीं कहानियों का अंतिम रूप से चयन किया गया जिनमें बाल पात्रों को जीवन की चुनौतियों और समस्याओं का सामना करते हुए चित्रित किया गया है। इन दोनों चरणों में उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण तथा सुविधा नमूनाकरण की रणनीतियों को जोड़ा गया है (क्रेसवेल, 2020)। इसके उपरांत निगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण के लिए मास्टेन (2015) प्रदत्त सामाजिक-सांवेगिक विकास के सिद्धांत को कसौटी माना गया है। यह सिद्धांत सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को परिभाषित करते हुए उनके विकास तथा संवर्धन हेतु महत्वपूर्ण रक्षात्मक कारकों की पहचान करता है।

मास्टेन (2015) के अनुसार किसी भी समुदाय या परिवार में बच्चों की विकास की प्रक्रिया सरल एवं एक रेखीय न होकर जटिल तथा पारस्परिक होती है। विकास की इस प्रक्रिया में बच्चे को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियाँ सामान्यतया उनके वातावरण, समुदाय, पारिवारिक या व्यक्तिगत पृष्ठभूमि से संबंधित होती हैं। इन चुनौतियों का सामना करने तथा अपेक्षित या अनुकूलित परिणाम प्राप्त करने के लिए बच्चा सतत प्रयास करते हुए आवश्यक निर्णय लेता है। पारंपरिक रूप से यह धारणा रही है कि चुनौतीपूर्ण परिस्थिति में केवल वही बच्चे सार्थक या सफल प्रयास करते हैं जो जन्म से अद्वितीय एवं प्रतिभाशाली होते हैं। इस धारणा का खंडन करते हुए मास्टेन (2001) बताते हैं कि सार्थक प्रयास करने या उचित निर्णय लेने के लिए बच्चों में असाधारण प्रतिभा का होना आवश्यक नहीं है। यह क्षमता बच्चों की सामुदायिक तथा पारिवारिक जुड़ाव, आत्म-नियमन तथा वातावरण के संदर्भ में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों की गतिशीलता से जुड़ी हुई है। उनके अनुसार निर्णय लेने तथा प्रयास करने के क्रम में बच्चों की सामाजिक-सांवेगिक कौशलों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। सामाजिक-सांवेगिक कौशल ऐसी क्षमताएँ हैं, जिनका उपयोग बच्चों द्वारा विकास या अनुकूलन की प्रक्रिया में सकारात्मक परिणाम की अपेक्षा के साथ गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए किया जाता है। इससे बच्चे प्रतिकूलता पर नियंत्रण हासिल करते हैं। मास्टेन (2015) के अनुसार बच्चे प्रायः अपनी पृष्ठभूमि में उपस्थित अनुकूलकों के अनुसार अपने सामाजिक-सांवेगिक कौशलों का उपयोग करते हैं। उदाहरणस्वरूप, वे अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, विश्वास के आधार पर सामाजिक तथा पारिवारिक संबंध स्थापित करते हैं तथा अपने वातावरण के साथ जुड़ने का प्रयास करते हैं। मास्टेन (2015) ने बच्चे के परिवार, विद्यालय तथा समाज, बच्चे का आत्म तथा आस-पास के वातावरण को अनुकूलकों के रूप में चिह्नित किया है। इन अनुकूलकों की दो प्रकृति होती है— ये सदैव रक्षात्मक कारक या जोखिमयुक्त कारक के रूप में

बच्चे की पृष्ठभूमि में उपस्थित रहते हैं। रक्षात्मक कारक बच्चे की पृष्ठभूमि में स्थित अनुकूलकों की सकारात्मक परिस्थितियाँ हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों अर्थात चुनौती या समस्या से निपटने में सहायक होती हैं। ये जोखिमयुक्त कारकों के प्रभाव को कम करती हैं, जबकि जोखिमयुक्त कारक अनुकूलकों की नकारात्मक परिस्थितियाँ हैं जो बच्चे के विकास में बाधा बनती है। मास्टेन (2015) के अनुसार बच्चों में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के विकास में रक्षात्मक कारकों की ही भूमिका होती है। इन्होंने रक्षात्मक कारक के रूप में चार प्रमुख कारकों को चिह्नित किया जिन्हें सामूहिक रूप से 'रक्षात्मक कारकों का प्रतिमान' कहा जाता है। इस प्रतिमान के अनुसार बच्चों की पृष्ठभूमि में उपस्थित अनुकूलक, प्रीतिपूर्ण संबंध या जुड़ाव, पहल करने की अभिवृति, स्व-नियमन तथा सांस्कृतिक स्वीकृति के रूप में कार्य करते हैं।

उपरोक्त सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत इस लेख में सोद्देश्य रूप से चयनित तीन लोककथाओं का विश्लेषण किया गया है। इन तीनों कहानियों में केंद्रीय पात्र के रूप बच्चे हैं जो अपने परिवेश के रक्षात्मक कारकों के बीच जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हैं तथा अपेक्षित सकारात्मक परिणामों को प्राप्त करते हैं।

लोककथाओं का विश्लेषण

कहानियों की कहानी

बैगा लोककथा 'कहानियों की कहानी' थुरिया नामक बालक पर आधारित है। इस लोककथा के आरंभ में ही पाठक को ज्ञात होता है कि थुरिया के माता-पिता का देहांत हो चुका है। वह अपने चाचा के साथ रहता है। इस मोड़ पर पाठक को सूचित किया जाता है कि— "थुरिया का चाचा उसे पसंद नहीं करता, लेकिन गाँववालों के डर से उसे (थुरिया) अपने घर से निकाल भी नहीं पाता था" (पृ. 170)। मास्टेन के सिद्धांतानुसार इस कथन से स्पष्ट होता है कि थुरिया के सामने देखभाल करने वाले अभिभावक के अभाव में नापसंद करने वाले चाचा के साथ समायोजन बैठाने की चुनौती है। थुरिया की ओर से चाचा का नापसंद ना किया जाना उसके सामाजिक-सांवेगिक नियमन को दिखाता है। यह नियमन ही उसके चरित्र को अद्वितीय बनाता है। इस कहानी में आगे पाठक को ज्ञात होता है कि एक बार चाचा अपनी बेटी से मिलने जा रहा था। चलते समय उसने थुरिया को भी साथ ले लिया। इस दौरान थुरिया अपने चाचा का पूरा ध्यान रख रहा था। रास्ते में विश्राम करते समय चाचा के मस्तिष्क से चार कहानियाँ बाहर निकलती हैं और वे विभिन्न रणनीतियों से चाचा को मारने की योजना बनाती हैं। सोने का नाटक करता हुआ थुरिया इन कहानियों की योजना को सुनता है। जब इसकी भनक कहानियों को लगी तब उन्होंने कहा कि "यदि थुरिया हमारी बातें अपने चाचा को बता देगा तो वह पत्थर का बन जाएगा" (पृ. 171) और वह तभी इंसान बनेगा जब चाचा का नाती अपने हाथों से उस पत्थर को स्पर्श करेगा। इस तरह से प्रतिकूल संबंधों के बीच थुरिया को अपने चाचा पर आसन्न संकट की जानकारी है। यदि वह इस संकट से चाचा को उबारता है, तो वह खुद समस्या में आ जाएगा। अब इस परिस्थिति

में थुरिया के पास दो विकल्प थे। पहला, वह अपने चाचा को कहानियों की योजना के बारे में बता दे, परंतु चाचा और थुरिया के मध्य विश्वास की कमी थी, इसलिए संभवतया चाचा उसकी बात पर यकीन नहीं करते और थुरिया पत्थर का बन जाता। दूसरा, थुरिया अपने चाचा को कहानियों के योजनानुसार मरने देता तथा आजीवन अपने चाचा के दबाव से मुक्त हो जाता। हालाँकि ये दोनों ही विकल्प उसके जोखिमयुक्त कारकों को मजबूती प्रदान करते, क्योंकि चाचा की मृत्यु के स्थिति में थुरिया के अपने ही अनुकूलकों को नुकसान पहुँचाता। इसलिए थुरिया समस्या समाधान की अभिप्रेरणा से खुद को कर्ता मानते हुए तीसरा विकल्प चुनता है और उचित मौका देखकर कहानियों की योजना को अपने प्रयासों से विफल करता है। वह अपनी सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता से त्वरित निर्णय लेता है। वह खाना खाते समय अपने चाचा के कौर पर झपट्टा मारकर गिरा देता है। इससे उसके चाचा काँटायुक्त रोटी खाने से बच जाता है। अगली समस्यात्मक परिस्थिति में वह वृक्ष के नीचे से चाचा को अपनी ओर खींचता है, जिससे वृक्ष की टूटी हुई डाली उसके चाचा के ऊपर न गिरे। इस तरह से अन्य मौकों पर भी वह अपने चाचा की जान बचाता है। ये सभी परिस्थितियाँ सांवेगिक संतुलन करते हुए समस्या समाधान की समर्थता को दिखाती हैं। इसी क्रम में कहानी आगे बढ़ती है और थुरिया के चाचा उसकी सराहना करते हुए उससे इन युक्तियों के बारे में पूछते हैं। यह जानते हुए भी कि यदि थुरिया चाचा को सच्चाई बता देगा, तो वह पत्थर का बन जाएगा, थुरिया अपने चाचा को सारी बात बताता है और वह पत्थर का बन जाता है। यह घटनाक्रम सांवेगिक नियमन के अभाव में प्राप्त नकारात्मक परिणाम को दिखाते हैं। यहाँ पाठक को संकेत मिलता है कि स्व-नियमन एक महत्वपूर्ण घटक है, जो जोखिमयुक्त कारकों के प्रभाव को कम करता है। चूँकि थुरिया और उसके चाचा के बीच प्रीतिपूर्ण संबंध नहीं था, अतः उसके चाचा थुरिया के पत्थर बनने की सच्चाई को किसी से साझा नहीं करते। यहाँ पाठक को थुरिया से स्वाभाविक सहानुभूति होती है। इस सहानुभूति को इस सांस्कृतिक विश्वास के साथ जोड़ा जाता है कि 'भला करने वाले का हमेशा भला होता है।' कहानी के अंत में पाठक को ज्ञात होता है कि थुरिया की चचेरी बहन के बेटे के स्पर्श से थुरिया फिर से मनुष्य बन गया।

इस तरह से यह कहानी पाठक को एक आम बालक थुरिया के जीवन की चुनौतियों से परिचित कराती है। थुरिया के पास प्रीतिपरक संबंधों का रक्षात्मक कारक कमजोर था। अतः वह उनसे एक खास तरह का संबंध विकसित करता है। इस संबंध में किसी प्रकार की नकारात्मकता नहीं है। वह अपने संवेगों का नियमन करते हुए पसंद न करने वाले चाचा को अपना परिवार मानता है। वह अपनी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में पहल करने, सतत कार्य करते रहने और खुद पर विश्वास करने की प्रवृत्तियों का परिचय देता है। चाचा के आसन्न संकटों का सामना करते समय वह स्वतंत्रकर्ता की भूमिका में अपने निर्णय लेता है और बिना घबराए हर बाधा को पार करता है। इस अति उत्साह पूर्ण माहौल पर सांवेगिक नियमन की असफलता का परिणाम उसे प्राप्त होता है और वह पत्थर का बन जाता है। वस्तुतः थुरिया का

पत्थर बनना पाठकों के लिए संदेश है कि सांवेगिक नियमन का अभाव जोखिम को बढ़ा देते हैं। कहानी के अंत में परिवार और समाज जैसे अनुकूलक भी रक्षात्मक कारक के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह से, थुरिया उचित अवसरों का लाभ उठाते हुए अपने अनुकूलकों में संशोधन करता है और अपने सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को सुदृढ़ करते हुए चुनौतियों से पार पाता है।

बाप-बेटा

कोल लोककथा 'बाप-बेटा' में पिता तथा पुत्र के मध्य मधुर एवं सकारात्मक संबंध हैं। इस तरह से बेटे के पास पिता के रूप में एक रक्षात्मक कारक उपस्थित है। यह कहानी एक यात्रा से शुरू होती है जिसमें बाप-बेटा अवसरों की तलाश में दूसरे शहर जा रहे होते हैं। जंगल के रास्ते में उन्हें एक मंदिर दिखाई पड़ता है, जिसमें कई तरह के पकवान रखे हुए थे। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने वह पकवान खाए, परंतु कुछ देर बाद एक राक्षस आकर अपने पकवान ढूँढ़ने लगा। इस कहानी में पहली चुनौती यहीं दिखाई पड़ती है। राक्षस को देखकर वे दोनों घबराए नहीं, बल्कि शांति से एक कमरे में छिप गए। इस परिस्थिति में पिता का भरोसा तथा संयम पुत्र के लिए सुरक्षा तथा मार्गदर्शन की तरह कार्य कर रहा था। वह बिना घबराए हुए अपने संवेगों को नियंत्रित करता है तथा राक्षस के जाने का इंतजार करता है। वहीं राक्षस ने समझा कि जंगल में कोई महाराक्षस आ गया है जिसने उसके पकवान को खाने का साहस किया और मंदिर के बाहर लोमड़ी ने उसकी मदद का वादा किया। लोमड़ी के मंदिर में प्रवेश करते ही बेटे ने तुरंत 'कमरे में रखा घड़ा लोमड़ी के सिर में फंसा दिया...लोमड़ी घबरा कर बाहर भागी' (पृ. 275)। यह गतिविधि बेटे में चुनौतियों से निपटने की रचनात्मक प्रवृति को दर्शाती है। वह पहल करता है तथा निर्णय लेते हुए अवसर का लाभ उठाता है। इस प्रसंग में बेटे का आत्मविश्वास एक सकारात्मक परिणाम लेकर आता है। दूसरी तरफ लोमड़ी के जाने के बाद शेर मंदिर में प्रविष्ट होता है परंतु शेर को देखकर भी वे दोनों भयभीत नहीं हुए। बेटे ने बगल में रखा 'दांतेदार फावड़ा उठाया और शेर की पीठ पर खरोंच दिया' (पृ. 276)। इस तरह से बेटे ने पुनः अपनी सूझ-बूझ से एक और चुनौती का सामना करते हुए समस्या का समाधान किया। बेटे द्वारा की जाने वाली हर पहल के पीछे पिता की उपस्थिति अभिप्रेरणा का कारक थी। यह कहानी दर्शाती है कि सामजिक-सांवेगिक कौशलों के क्रियान्वयन में संवेगों के नियंत्रण की भूमिका आवश्यक है। अगर राक्षस, लोमड़ी या शेर को देखकर दोनों भयभीत हो जाते तो संभवतः परिणाम दूसरा होता।

गड़ा धन

यह कहानी सेकप्पी नामक स्त्री और उसके पुत्र, चिन्नादुरै के जीवन पर आधारित है। कहानी के प्रारंभ में चिन्नादुरै का चारित्रिक विवरण मिलता है— "दुर्भाग्यवश चिन्नादुरै बुरी संगत में पड़ गया था और अपनी माँ द्वारा कमाए धन का दुरुपयोग किया करता था। उसे मदिरा पीने और जुआ खेलने की लत लग गई थी" (पृ. 234)। वहीं दूसरी ओर अपने बेटे की चिंता में सेकप्पी बीमार रहने लगी थी। स्पष्ट है

कि इस कहानी में परिवार रक्षात्मक कारक की तरह उपस्थित है, परंतु चिन्नादुरै के चरित्र में आत्मबोध की कमी दिखाई पड़ती है। अपने बेटे को सुधारने के लिए सेकप्पी एक योजना बनाती है और अपने बेटे को बताती है कि उसे अपने पिता द्वारा छुपाए गए धन को खोजना चाहिए। माँ का यह उपाय परिवार रूपी रक्षात्मक कारक द्वारा सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के संवर्धन को दिखाते हैं। सेकप्पी अपने पुत्र के लिए एक ऐसी योजना बनाती है, जहाँ उसके पुत्र को चुनौतियों का सामना करते हुए आत्मबोध का अवसर प्राप्त हो। उसके पुत्र में यह समझ आए कि वह अपनी क्षमताओं का उपयोग करते हुए सकारात्मक बदलाव कर सकता है। इस सकारात्मक बदलाव की यात्रा में माँ की योजनानुसार चिन्नादुरै सबसे पहले जंगल गया और खजूर के पेड़ पर चढ़ने का प्रयास किया। उसे पेड़ पर चढ़ना नहीं आता था, परंतु कई विफल प्रयासों के बाद अंतत: वह पेड़ पर चढ़कर खजूर तोड़ता है। इसी तरह मेहनत से वह अगले दिन मछली पकड़ने में सफल हो जाता है। हर सफलता से उसका आत्मविश्वास बढ़ता है और उसे नई पहल की अभिप्रेरणा मिलती है। इसके बाद वह जंगल से लकड़ी और पान के पत्ते लेकर आता है। अगले दिन उसे इन सामग्रियों को अपने पैरों से मसलना था, परंतु "अपने श्रम से प्राप्त की गई वस्तुओं को नष्ट करने का उसका मन ही नहीं कर रहा था" (पृ. 236)। उसके मन का यह द्वंद्व आत्म-जागरूकता का परिणाम है। उसमें खुद के कर्ता होने और खुद की उपलब्धियों को नष्ट न करने की सूझ पैदा हुई है। उसकी माँ उसके इस स्व-बोध का उपयोग करते हुए उसके सामने प्रश्न रखती है कि क्या उसे माँ द्वारा श्रम करके लाए धन को जुए और मदिरा में नष्ट करना चाहिए? यह प्रश्न उसे एक नैतिक द्वंद्व में उलझाते हैं। वह इस द्वंद्व पर विचार करते हुए माँ के श्रम से अर्जित धन के दुरुपयोग पर पछतावा करता है।

यह कहानी सामाजिक-सांवेगिक असंतुलन एवं कुप्रबंधन के दुष्परिणामों को चिह्नित करते हुए सुधार की संभावना को साकार करती है। कहानी के आरंभ में परिवार के रक्षात्मक परिवेश में चिन्नादुरै की उश्रृंखलता देखकर आभास होता है कि वह खुद के लिए क्या हितकर और क्या अहितकर है, इसका निर्णय नहीं ले पा रहा है। उसकी माँ को आभास होता है कि उसके पुत्र के आस-पास कोई ऐसा रक्षात्मक कारक नहीं है, जो उसे रोल मॉडल दे सके। उसकी माँ स्वयं एक सशक्त रक्षात्मक कारक की भूमिका में अपने बेटे के लिए समाधान तंत्र बनती है। वह उसे समाधान बताने के बजाय समस्याओं की शृंखला में संलग्न होने, उससे जूझने और उनसे अपना रास्ता खुद निकालने के लिए सहयोग करती है। चिन्नादुरै खजूर के पेड़ पर चढ़ने, मछली पकड़ने तथा जंगल से लकड़ी एवं पान के पत्ते लाने के क्रम में वह असफल होने पर भी प्रयासरत था। उसके इस सतत प्रयास से उसमें बदलाव होने लगे। इन बदलावों से चिन्नादुरै की आदतों में अचानक कोई सुधार नहीं हुआ। हाँ, यह अवश्य हुआ कि उसमें सामाजिक-सांवेगिक नियमन के लक्षण प्रकट हुए। धीरे-धीरे उसने न केवल स्वयं से पहल करना सीखा, बल्कि नैतिक निर्णय लेने की क्षमता को भी विकसित किया। कहानी के अंत में चिन्नादुरै को आत्मबोध होता है और वह

घोषणा करता है कि अब उसे गड़े हुए धन की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसने मेहनत से धन अर्जित करना सीख लिया है।

व्याख्या तथा निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषित तीनों लोककथाओं में कौशलों के विकास में निम्नलिखित रक्षात्मक कारकों के प्रभाव को देखा जा सकता है—

- पहला कारक, प्रभावी पालन-पोषण है। इसके अंतर्गत अभिभावकों की भूमिका सम्मिलित है। पहली कहानी में माता-पिता का न होना, थुरिया के लिए चुनौतीपूर्ण था। जबकि दूसरी कहानी में पिता के विश्वास और उपस्थिति ने बेटे के मनोबल को बढ़ा दिया था। तीसरी कहानी में चिन्नादुरै की माँ ने सूझ-बूझ से अपने बेटे के लिए सुधारात्मक योजना बनाई।
- दूसरा कारक, परिवारेतर अन्य सक्षम वयस्क के साथ सकारात्मक या नकारात्मक संबंध हैं। इसके अंतर्गत परिवारेतर घनिष्ठ संबंधों की भूमिका सम्मिलित है। पहली कहानी में थुरिया के चाचा नकारात्मक भूमिका में थुरिया के लिए बाधक थे। उनकी उपस्थिति में थुरिया का सहयोगी तंत्र बिना किसी महत्वपूर्ण कर्ता के थुरिया के आत्म-नियमन पर ही आधारित था।
- तीसरा कारक, दोस्तों या भाई-बहनों के साथ सकारात्मक संबंध हैं। पहली कहानी में थुरिया की चचेरी बहन एक सकारात्मक भूमिका में है। तीसरी कहानी में चिन्नादुरै के दोस्त नकारात्मक भूमिका में है। उक्त तीनों कारक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से संबंधित हैं।
- इसके अतिरिक्त इन लोककथाओं में व्यक्तिगत विशेषताओं से संबंधित कारक भी प्रकट हुए, जो सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के विकास में सहयोगी हैं। इनमें पहला कारक है— बुद्धिमत्ता और समस्या-समाधान कौशल। तीनों ही लोककथाओं में केंद्रीय बाल पात्र विपरीत परिस्थितियों में अपनी तात्कालिक सूझ और समस्या समाधान कौशल का परिचय देते हैं। दूसरा व्यक्तिगत कारक है सफल होने की अभिप्रेरणा। तीनों ही कहानियों के केंद्रीय पात्रों में सफल होने की अभिप्रेरणा विद्यमान है। यह अभिप्रेरणा सामाजिक-सांवेगिक कौशलों का प्रतिफल और उनका मुख्य चालक बल है। इसी के प्रभाव में चिन्नादुरै ने सतत असफलता के बीच भी सफलता का रास्ता खोज लिया था।
- चौथा कारक है, कर्ता होने का बोध। हर कहानी के कथानक में केंद्रीय पात्र को बोध था कि वह कर सकता है। दूसरी कहानी में असाध्य परिस्थिति में भी बेटा जंगली जानवरों से पिता और स्वयं की रक्षा करता है। पहली कहानी में थुरिया भी तीनों समस्याओं से निपटता है।
- पाँचवा कारक है, आत्म-नियमन। इसकी सहायता से ही तीनों कहानियों के पात्रों ने संज्ञान और संवेग का संतुलन साधा। आत्म-नियमन वास्तव में चुनौतीपूर्ण स्थिति में बिना घबराए हर संभव विकल्प पर विचार करने की क्षमता को इंगित करता है। थुरिया और चिन्नादुरै, दोनों पात्रों की उपस्थिति सकारात्मक परिणाम देती है, जबकि अनुपस्थिति नकारात्मक परिणाम देती है। उक्त सात कारकों के प्रभाव में प्रत्येक

कहानी एक आनंददायी अंत पर समाप्त होती है। इन कहानियों का सुखद अंत हमारे सांस्कृतिक विश्वास का प्रतीक है, जहाँ 'अंत भला तो सब भला' को सांस्कृतिक मानक माना जाता है। यह विश्लेषण स्थापित करता है कि सामाजिक-सांवेगिक कौशलों के विकास में सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों तरह के रक्षात्मक कारकों की भूमिका होती है। दोनों कारक जोखिमों को कम करने का कार्य करते हैं। ये कहानियाँ जिस तरह से विकसित होती हैं, उससे यह भी प्रकट होता है कि सामाजिक-सांवेगिक कौशल प्राकृतिक, जन्मजात एवं स्थायी न होकर अधिगम योग्य एवं लचीले हैं। इन्हें उचित मार्गदर्शन एवं रणनीतियों की सहायता से संवर्धित एवं विकसित किया जा सकता है।

शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थ

बच्चों में सामाजिक-सांवेगिक कौशलों को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षकों को संदर्भजन्य रक्षात्मक कारकों पर विचार करना चाहिए। इसके लिए लोककथाएँ उन्हें संस्कृति स्पंदित सामग्री प्रदान कर सकती हैं। इसके लिए कक्षा में ऐसी लोककथाओं का उपयोग करना चाहिए, जो बच्चों के परिवार और परिवेश में उपस्थित हैं। इसका सबसे सरल और महत्वपूर्ण माध्यम बच्चे स्वयं हैं। उन्हें कक्षा के साथ लोककथाओं को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इन लोककथाओं के संदर्भ को समझने के लिए किसी अन्य भाषा या माध्यम की आवश्यकता भी नहीं होती है। इस कारण इनका उपयोग कक्षा की अंतःक्रियात्मकता को बढ़ा देता है। बच्चे जब अपने परिवेश की लोककथाओं को प्रस्तुत करें तो प्रस्तुति के उपरांत शिक्षक को उसमें निहित सामाजिक-सांवेगिक कौशलों की चर्चा करनी चाहिए। उदाहरण के लिए शिक्षक को कक्षा के सम्मुख प्रश्न रखना चाहिए कि प्रस्तुत लोककथा में कौन-से जोखिमयुक्त कारक थे? कौन से अनुकूलक थे? किस तरह से परिवार, मित्र एवं अन्य संबंधियों ने रक्षात्मक भूमिका निभाई? पात्रों के व्यक्तिगत गुण क्या थे? इत्यादि। इसके अतिरिक्त शिक्षक स्वयं लोककथाओं का चयन कर सकता है। इस दौरान शिक्षक ध्यान रखें कि लोककथाओं का केंद्रीय पात्र बालक या बालिका ही हों और कहानी का अंत निराशाजनक न हो। शिक्षक या बच्चे, जो भी लोककथा को प्रस्तुत करें, प्रस्तुति के उपरांत की चर्चा प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। इस दौरान बच्चों को मनन करने का समय अवश्य दिया जाए। उन्हें कहानी में संलग्न रखने के लिए बीच-बीच में उनसे सवाल पूछे जाएँ। कहानी को सुनने के बाद समेकन के लिए गतिविधि कराई जाए। इस दौरान बच्चों की प्रतिक्रियाओं को एकत्रित किया जाए। इन प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण शिक्षक को भावी योजना बनाने में सहायता प्रदान करेगा। इसी तरह कहानी के कथानक की सहायता से अवबोधन के विस्तार एवं अनुप्रयोग के लिए विद्यार्थियों के सम्मुख कहानी से संबंधित समस्यात्मक प्रश्न रखे जाएँ और उन पर चर्चा की जाए। लोककथाओं में प्रस्तुत की गई चुनौतियों पर चिंतन करने हेतु कक्षा में सामूहिक परिचर्चा का आयोजन किया जा सकता है। इससे बच्चे भावनात्मक रूप से इन घटनाओं से जुड़ सकेंगे। इसके अलावा लोककथाओं पर आधारित

अभिनय एवं नाट्य-प्रस्तुतीकरण जैसी गतिविधियों का आयोजन भी किया जा सकता है। लोककथाओं को पढ़ाने, पढ़ने या सुनाने के बाद शिक्षकों को चाहिए कि वे कक्षा में बच्चों से उनके निजी अनुभवों से संबंधित समस्याओं और इन समस्याओं से निपटने संबंधित बच्चों की युक्ति पर भी चर्चा करें। शिक्षक लोककथाओं के चयन और प्रयोग के लिए समुदाय के साथ अंत:संबंध विकसित करते हुए समुदाय की लोककथाओं की संक्षिप्त संचयिता तैयार कर सकते हैं। इससे उन्हें संस्कृति स्पंदित शिक्षण को क्रियान्वित करने में सहायत मिलेगी। कुछ अवसरों पर समुदाय से भी वयस्कों को लोककथाएँ सुनाने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

लोककथाओं को एक ऐसे शिक्षणशास्त्रीय उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है, जो बच्चों में आत्म-जागरूकता, आत्म-प्रबंधन, सामाजिक जागरूकता, सामाजिक संबंधों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति और जिम्मेदारीपूर्ण ढंग से निर्णय लेने के कौशलों को विकसित करने में सहायता प्रदान करती हैं। लोककथाओं का कक्षा में प्रभावपूर्ण उपयोग बच्चों की सांस्कृतिक साक्षरता को भी समृद्ध करता है। वे दूसरों के प्रति समानुभूतिपूर्वक ढंग से विचार करने लगते हैं। इस तरह की प्रवृत्तियों का विकास बच्चों में परिवेश के साथ बेहतर समायोजन और अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को सुगम करता है।

संदर्भ

ओर, एच. 2000. डायनामिक आस्पेक्ट्स ऑफ फेयरी टेल्स : सोशल एंड इमोशनल कॉम्पीटेंस थ्रू फेयरी टेल्स. *स्कैंडिनेवियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च*. 44(1), पृ.सं. 89–103.

कुमारी, ए. और आर. यादव. 2017. डेवलपिंग रिलेशनशिप स्किल्स अमंग स्टूडेंट्स : रोल ऑफ स्टोरी टेलिंग. *एजुकेशनल क्वेस्ट : एन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड सोशल साइंसेज*. 8(3), पृ.सं. 447. https://doi.org/10.5958/2230-7311.2017.00091.5

क्रेसवेल, जे.डब्ल्यू. 2020. *एजुकेशनल रिसर्च : प्लानिंग, कंडक्टिंग, एंड ईवेलुएटिंग क्वांटिटेटिव एंड क्वालिटेटिव रिसर्च* (ग्लोबल एडिशन). पियर्सन हायर एड.

कौर, जे. और ए. शर्मा, 2022. व्हाट डू आई नो अबाउट सोशियो-इमोशनल लर्निंग : ए कम्पेरेटिव एनालिसिस बिटवीन पब्लिक एंड प्राइवेट प्रीस्कूल टीचर्स इन पंजाब. *सेज ओपन*. 12(2). https://doi.org/10.1177/21582440221091254

गुप्ता, ए. 2024. डू वी डेयर डिस्टर्ब दी स्टेटस क्यू? : ए क्रिटिकल डिस्कोर्स एनालिसिस ऑफ कसेल सोशल एंड इमोशनल लर्निंग (एस.ई.एल.) फ्रेमवर्क (एम.ए. थीसिस). यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया. https://doi.org/10.14288/1.0443551

दीक्षित, वी., जी. कौर और वी.के. शनवाल. 2017. इमोशनल इंटेलिजेंस इन इंडियन फोकलोर. *जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज*. 4(1), पृ.सं. 1–8.

मास्टेन, ए.एस. 2001. आर्डिनरी मैजिक : रेसिलिएंस प्रोसस्सेस इन डेवलपमेंट. *अमेरिकन साइकोलोजिस्ट*. 56(3), पृ.सं. 227–238. https://doi.org/10.1037/0003-066x.56.3.227

मुरुगप्पन, एन.पी. और ए.एन. वाणीश्री. 2019. विद्यालय बेस्ड मेंटल हेल्थ प्रमोशन फॉर अर्बन अडोलसेंस इन इंडिया. *जर्नल ऑफ इंडियन एसोसिएशन फॉर चाइल्ड एंड एडोलसेंट मेंटल हेल्थ*. 15(4), पृ.सं. 46–67.

रा.शै.अ.प्र.प. 2023. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन 2023*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली.

लिंडमैन, बी. और एम. क्लिंग. 1969. बिब्लियोथेरेपी : डेफिनिशन, यूजेज एंड स्टडीज. *जर्नल ऑफ विद्यालय साइकोलॉजी*. 2, पृ.सं. 36–41.

सरस्वती, टी.एस., एस. मेनन और ए. मदन. 2017. चाइल्डहुड इन इंडिया : ट्रेडिशंस, ट्रेंड्स एंड ट्रांसफॉर्मेशन. टेलर एंड फ्रांसिस.

सिंह, शरद. 2023. *भारत के आदिवासी क्षेत्रों की लोककथाएँ* (संस्करण 7). राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली.

शिक्षा मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.

हीथ, एम.ए., डी. शीन, डी. लेवी, ई. यंग और के. मनी. 2005. बिब्लियोथेरेपी : ए रिसोर्स तो फेलिसिटेट इमोशनल हीलिंग एंड ग्रोथ. *विद्यालय साइकोलॉजी इंटरनेशनल*. 26(5), पृ.सं. 563–580.